नईदुनिया

संपादकीय

जीएमसी में गुरु ही नहीं, आठ विभागों का भविष्य एक प्रोफेसर के भरोसे

भोपाल *के गांधी मेडिकल कॉलेज (जीएमसी) को देखकर लगता है कि स्वास्थ्य विभाग ने इसे मेडिकल कॉलेज नहीं, बल्कि सर्कस बना दिया है। इक्कीस में से आठ विभागों में सिर्फ एक-एक प्रोफेसर पदस्थ हैं। बायोकेमिस्ट्री, फिजियोलॉजी, फॉरेंसिक मेडिसिन, नेत्र रोग, ईएनटी, रेडियोथेरेपी, सीटीवीएस और माइक्रोबायोलॉजी जैसे महत्वपूर्ण विभागों में, जहां गंभीर मरीजों का इलाज होता है और भविष्य के डॉक्टरों को विशेषज्ञता की शिक्षा दी जाती है, वहां पूरी व्यवस्था एक ही प्रोफेसर के भरोसे है। क्या एक प्रोफेसर सुबह बायोकेमिस्ट्री पढ़ाएगा, दोपहर में आंख का ऑपरेशन करेगा, शाम को फॉरेंसिक मेडिसिन में पोस्टमार्टम करेगा और रात में सीटीवीएस में दिल का ऑपरेशन सिखाएगा? यह कैसी व्यवस्था है?*

गंभीर मरीज इलाज की उम्मीद लेकर आते हैं और मेडिकल छात्र बेहतर डॉक्टर बनने का सपना लेकर दाखिला लेते हैं, लेकिन जीएमसी के आठ विभागों में दोनों का भविष्य एक-एक प्रोफेसर के भरोसे है। प्रोफेसरों की कमी से विभागीय कामकाज और विशेषज्ञ डॉक्टर तैयार करने की व्यवस्था प्रभावित होना स्वाभाविक है। हालात यह हैं कि विभागाध्यक्ष बदलने के लिए भी दूसरा प्रोफेसर उपलब्ध नहीं है। दो साल में एचओडी बदलने का नियम यहां बेअसर है। नियम तो बना दिया, लेकिन जब दूसरा आदमी ही नहीं है तो बदलाव कैसे होगा? यह व्यवस्था की विडंबना है।

सबसे चिंताजनक स्थिति नेत्र रोग विभाग की है। कभी इस विभाग में प्रोफेसर के चार पद थे। आरोप है कि आपसी राजनीति और पद पर बने रहने की होड़ में वर्तमान एचओडी ने बाकी पद सरेंडर करा दिए। यानी एक कुर्सी बचाने की कवायद में पूरे विभाग की क्षमता ही घटा दी गई। मरीजों के भार और पीजी सीटों के अनुपात में दो से तीन प्रोफेसरों की जरूरत बताई जा रही है, इसके बावजूद नए पद स्वीकृत कराने के प्रयासों पर सवाल उठ रहे हैं। रीजनल इंस्टीट्यूट ऑफ ऑप्थल्मोलॉजी (आरआईओ) बंद होने के बाद नेत्र रोग विभाग की पीजी सीटें घटकर आठ रह गईं। इससे आंखों की गंभीर बीमारियों पर शोध और आधुनिक उपचार की सुविधाओं पर भी असर पड़ा है। विडंबना देखिए, जो विभाग लोगों को आंखों की रोशनी देता है, वही आज खुद व्यवस्था के अंधेरे में है।

नेशनल मेडिकल कमीशन के मानकों के अनुसार पीजी सीटों के लिए निर्धारित संख्या में प्रोफेसर और अन्य फैकल्टी जरूरी हैं। कमी बनी रही तो भविष्य में सीटें घटने या मान्यता पर असर पड़ सकता है। वरिष्ठ डॉक्टरों की अनुपलब्धता से छात्रों का प्रशिक्षण प्रभावित होगा। इसका सीधा असर भविष्य में मरीजों को मिलने वाले उपचार पर पड़ेगा। आखिर बिना पर्याप्त मार्गदर्शन और प्रशिक्षण के विशेषज्ञ डॉक्टर कैसे तैयार होंगे? स्वास्थ्य विभाग की इस लापरवाही पर सवाल उठना जरूरी है। एक तरफ हर जिले में मेडिकल कॉलेज खोलने का दावा किया जा रहा है, दूसरी तरफ राजधानी के सबसे पुराने मेडिकल कॉलेज के महत्वपूर्ण विभाग फैकल्टी के अभाव में जूझ रहे हैं। पद सरेंडर कराने के पीछे क्या परिस्थितियां थीं, इसकी जांच क्यों नहीं होनी चाहिए? डीन डॉ. कविता एन. सिंह से इस संबंध में बात की गई, लेकिन उन्होंने कुछ भी कहने से मना कर दिया। संस्थान के मुखिया की यह चुप्पी भी कई सवाल खड़े करती है। वर्षों से एक ही फैकल्टी के हाथ में पूरे विभाग की कमान है। क्या वह प्रोफेसर कभी छुट्टी नहीं लेता, बीमार नहीं पड़ता? यदि वह अनुपस्थित हो जाए तो क्या पूरा विभाग ठप हो जाएगा? यह कोई निजी दुकान नहीं, बल्कि सरकारी मेडिकल कॉलेज है, जहां गरीब मरीजों की जान और मेडिकल छात्रों का भविष्य जुड़ा है। शिक्षकों की कमी दूर करने के लिए नए पद स्वीकृत करना और सरेंडर किए गए पदों को बहाल करना तत्काल जरूरी है। अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब एनएमसी की कार्रवाई से कॉलेज की मान्यता और पीजी सीटें खतरे में पड़ जाएं। स्वास्थ्य विभाग को समझना होगा कि मेडिकल कॉलेजों की संख्या बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं, उनमें योग्य शिक्षकों की उपलब्धता भी उतनी ही जरूरी है। आखिर एक प्रोफेसर कितने विभाग संभालेगा और कितने मुर्दे गिनेगा?

आजकल

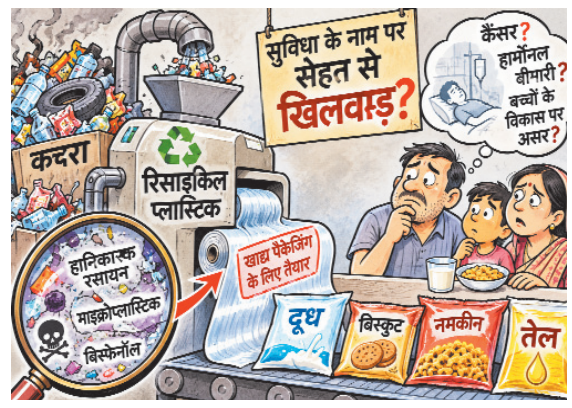
कचरे में भी कमाई का नया सरकारी खेल

भोपाल। केंद्र सरकार ने एक नवंबर से कबाड़ के कारोबार पर नए नियम लागू किए हैं। अब तक लोहे और धातु के कबाड़ पर लागू सख्ती का दायरा प्लास्टिक स्क्रैप, पुराने टायर, ई-वेस्ट और होटलों के इस्तेमाल किए हुए खाद्य तेल तक बढ़ा दिया गया है। ढाई लाख रुपये से अधिक की खरीद पर दो प्रतिशत टीडीएस काटना भी अनिवार्य किया गया है। देखने में यह व्यापारियों से जुड़ा फैसला है, लेकिन इसका असर हर घर की दीवाली की सफाई तक पहुंचेगा।

पहले घर का पुराना कूलर, बर्तन या तार बेचने पर कबाड़ी नकद पैसे देकर चला जाता था। अब पंजीकृत खरीदार को लेनदेन का हिसाब रखना होगा, जीएसटीआर-7 भरना होगा और टीडीएस काटना होगा। जाहिर है, इसका खर्च वह कबाड़ बेचने वाले से वसूलेगा। यानी सरकारी खजाना भरेगा और आम आदमी की जेब हल्की होगी। सरकार की मंशा काले धन पर रोक लगाने और पर्यावरण संरक्षण की है। कबाड़ का बड़ा कारोबार आज भी नकदी में चलता है। ई-वेस्ट में कीमती धातुओं के साथ खतरनाक रसायन होते हैं। इस्तेमाल किए हुए खाद्य तेल की दोबारा बिक्री भी स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा है। लेनदेन का रिकॉर्ड रखने से इन गतिविधियों पर अंकुश लग सकता है। लेकिन सबसे बड़ा सवाल उस छोटे कबाड़ी का है, जो साइकिल लेकर गली-गली घूमता है। न उसके पास लैपटॉप है, न सीए और न ही ऑनलाइन रिटर्न भरने की जानकारी। ऐसे में वह कारोबार छोड़ने को मजबूर हो सकता है। इसका फायदा बड़ी कंपनियों को मिलेगा और कबाड़ का बाजार कुछ हाथों में सिमटने का खतरा बढ़ेगा। कबाड़ महंगा होगा तो उसका असर नई वस्तुओं की लागत पर भी पड़ सकता है। नियमों की मंशा गलत नहीं, लेकिन उन्हें लागू करने का तरीका व्यावहारिक होना चाहिए। सरकार छोटे कबाड़ियों को कारोबार के आकार के अनुसार राहत दे, सरल मोबाइल ऐप उपलब्ध कराए और बड़े कारोबारियों पर सख्ती करे। पारदर्शिता के नाम पर छोटे कारोबारियों को व्यवस्था से बाहर करना उचित नहीं है। अन्यथा कचरे से कमाई का यह नया सरकारी इंतजाम महंगाई और बाजार में एकाधिकार बढ़ाने का कारण बन सकता है। फिर लोग यही कहेंगे कि दीवाली पर घर साफ करना भी महंगा हो गया।

कचरे की बोतल से खाने की थाली तक का सफर क्या हम जहर को रिसाइकिल कर रहे हैं?

सुविधा के नाम पर खतरा बेचने की तैयारी



नई दिल्ली से आई एक खबर सीधे आपकी रसोई से जुड़ी है। देश में अब दूध, बिस्कुट, नमकीन, तेल और दूसरे खाद्य पदार्थों की पैकेजिंग में रिसाइकिल प्लास्टिक के इस्तेमाल का रास्ता खोलने की तैयारी है। अभी तक रिसाइकिल प्लास्टिक से हानिकारक रसायनों और पदार्थों के खाद्य उत्पादों में पहुंचने के खतरे के कारण इस पर प्रतिबंध था, लेकिन अब केंद्र सरकार इसे खोलने जा रही है।

भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (एफएसएसएआई) ने खाद्य पदार्थों की पैकेजिंग में रिसाइकिल पॉलीथीन के उपयोग को लेकर मसौदा तैयार किया है। सुनने में यह पर्यावरण बचाने वाला कदम लगता है, लेकिन असल सवाल आपकी सेहत का है। इतिहास देखिए। 2018 में खाद्य पदार्थों की पैकेजिंग, भंडारण, धुलाई और वितरण में रिसाइकिल प्लास्टिक के इस्तेमाल पर पूरी तरह प्रतिबंध था, क्योंकि इसके संभावित स्वास्थ्य जोखिमों को लेकर चिंता थी। 2022 में पहली बार पीईटी बोतलों से खाद्य-ग्रेड पीईटी बनाने की अनुमति दी गई, वह भी निर्धारित शर्तों के साथ। अब सरकार एक कदम और आगे बढ़कर बिस्कुट के रैपर, नमकीन की थैली और तेल की पैकेजिंग तक में रिसाइकिल प्लास्टिक के इस्तेमाल का रास्ता खोलना चाहती है। सवाल है कि जो चीज कल तक असुरक्षित मानी जा रही थी, वह आज अचानक सुरक्षित कैसे हो गई? क्या तकनीक इतनी बदल गई या कंपनियों का दबाव इतना बढ़ गया? सरकार के प्रस्ताव में दो तरह की रिसाइकिलिंग को मान्यता देने की बात है। पहली रासायनिक रिसाइकिलिंग और दूसरी मोनोमर प्रक्रिया से तैयार रिसाइकिल पॉलीथीन एवं पॉलीप्रोपलीन का उपयोग। इसके लिए गुणवत्ता फ्रेश प्लास्टिक के बराबर रखने, अंदरूनी परतों में सुरक्षा अवरोध बनाने और निर्धारित माइग्रेशन सीमाओं का पालन करने जैसी शर्तें रखी गई हैं। कागज पर यह सब अच्छा लगता है, लेकिन असली सवाल इसके क्रियान्वयन का है। भारत में रिसाइकिल प्लास्टिक का स्रोत कचरे के ढेर, नालों और कबाड़ियों के गोदाम भी हैं, जहां रसायनों, कीटनाशकों और अन्य खतरनाक पदार्थों के संपर्क में आए प्लास्टिक भी पहुंचते हैं। क्या आधुनिक तकनीक इन सभी हानिकारक अवशेषों को पूरी तरह हटा सकती है? और यदि प्रक्रिया में जरा भी चूक हुई तो उसका असर सीधे खाद्य पदार्थों पर पड़ सकता है।

इस फैसले के पीछे पर्यावरण संरक्षण के साथ आर्थिक हितों का पहलू भी समझना जरूरी है। बड़ी कंपनियों पर वर्जिन प्लास्टिक का इस्तेमाल कम करने और रिसाइकिल सामग्री का उपयोग बढ़ाने का दबाव है। खाद्य पैकेजिंग में इसकी अनुमति मिलने से उन्हें रिसाइकिल प्लास्टिक के इस्तेमाल का बड़ा बाजार मिल जाएगा। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में उपभोक्ता की सुरक्षा सर्वोपरि होनी चाहिए। क्या हमारे पास इतनी सक्षम प्रयोगशालाएं हैं कि हर स्तर पर गुणवत्ता की जांच हो सके? मिलावट और खाद्य सुरक्षा से जुड़ी मौजूदा चुनौतियों के बीच रिसाइकिल प्लास्टिक में मौजूद रासायनिक अवशेषों की निगरानी कैसे होगी? मसौदे में गुणवत्ता की शर्तें तय कर देना पर्याप्त नहीं है। उनकी नियमित जांच और उल्लंघन पर कठोर कार्रवाई भी जरूरी है। एक और महत्वपूर्ण पहलू भारत की जलवायु है। यहां दुकानों में बिस्कुट के पैकेट और तेल की बोतलें लंबे समय तक गर्मी के संपर्क में रहती हैं। ट्रकों में भी खाद्य उत्पाद ऊंचे तापमान पर सफर करते हैं। ऐसे में पैकेजिंग से रसायनों के खाद्य पदार्थों में पहुंचने की आशंका का वैज्ञानिक परीक्षण जरूरी है।

रिसाइकिल प्लास्टिक की सुरक्षा को लेकर किसी भी तरह की ढिलाई गंभीर स्वास्थ्य जोखिम पैदा कर सकती है। माइक्रोप्लास्टिक और रासायनिक तत्वों के संभावित प्रभावों को देखते हुए इस मामले में अतिरिक्त सावधानी बरतनी होगी। इसका अर्थ यह नहीं कि रिसाइकिलिंग बंद कर दी जाए। प्लास्टिक का पुनर्चक्रण जरूरी है, लेकिन हर तरह के उपयोग के लिए नहीं। इससे कुर्सियां, टेबल, डस्टबिन और सड़कें बनाई जा सकती हैं। खाद्य पदार्थों की पैकेजिंग के लिए सबसे सुरक्षित और प्रमाणित सामग्री का ही इस्तेमाल होना चाहिए। सरकार को खाद्य पैकेजिंग और अन्य उपयोगों के लिए स्पष्ट अंतर रखना होगा। पहले जिस सामग्री के इस्तेमाल पर प्रतिबंध था, उसे अब अनुमति देने से पहले उसके सुरक्षित होने के ठोस वैज्ञानिक प्रमाण सार्वजनिक किए जाने चाहिए। आखिर यह पैकेजिंग किसी मंत्री के घर तक सीमित नहीं रहेगी, गरीब की झोपड़ी तक पहुंचेगी, जहां बच्चा दूध की थैली से ही दूध पीता है। यदि सुरक्षा में चूक हुई तो उसकी कीमत आम आदमी को चुकानी पड़ेगी। इसलिए सुविधा से पहले सुरक्षा जरूरी है और रिसाइकिल से पहले जीवन।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

त्यौहार पर घर सूना और होटल फुल, यह है नया भारत

दिवाली अब मिठाई नहीं, टिकट से मनती है

धर्म भी हाउसफुल, जंगल भी हाउसफुल, दिल्ली के धुएं ने मध्यप्रदेश के रिसॉर्ट भर दिए, सौ प्रतिशत बुकिंग खुशी है या चेतावनी?

मध्यप्रदेश में इस बार दिवाली का नजारा बाजारों में नहीं, होटलों के रिसेप्शन पर दिखाई दे रहा है। खबर है कि धार्मिक और वाइल्डलाइफ पर्यटन से जुड़े ज्यादातर ठिकानों पर 25 नवंबर तक जगह खाली नहीं है। एमपी टूरिज्म के अधिकतर होटलों में 16 नवंबर तक 95 से 100 प्रतिशत तक एडवांस बुकिंग हो चुकी है। 17 से 22 नवंबर तक भी 80 प्रतिशत तक बुकिंग है और टाइगर रिजर्व में तो सफारी की एक भी सीट नहीं बची है। यह सिर्फ पर्यटन विभाग की सफलता नहीं, बल्कि आम भारतीय परिवार की सोच में आए बड़े बदलाव का संकेत है। त्योहार का मतलब बदल रहा है। पहले दिवाली का मतलब घर की लिपाई-पुताई, रिश्तेदारों का आना और पटाखे हुआ करता था, अब दिवाली का मतलब छुट्टियों का सही इस्तेमाल हो गया है। इस बार सात से नौ नवंबर तक छुट्टियां हैं और फिर 15-16 नवंबर को भी अवकाश है। इसी बीच वर्क फ्रॉम होम का चलन भी है। ऐसे में लोग सोचते हैं कि क्यों न काम जंगल के बीच रहकर किया जाए। दिल्ली में रहने वाले लोग, जो वहां के धुएं और भीड़ से परेशान हैं, मध्यप्रदेश का रुख कर रहे हैं। एक अधिकारी ने भी कहा है कि दिल्ली में वर्क फ्रॉम होम लागू होने से हमारे रिसॉर्ट में अधिकांश बुकिंग वहीं के पर्यटकों ने कराई है। यानी इस दिवाली दिया घर में नहीं, जंगल में जल रहा है।

आदमी दो जगह सुकून ढूंढता है, एक मंदिर में और दूसरा जंगल में। मध्यप्रदेश में दोनों की भरपूर उपलब्धता है। उज्जैन, महेश्वर, ओंकारेश्वर, ओरछा, चित्रकूट, खजुराहो, पचमढ़ी और मांडू जैसे धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थल हों या बांधवगढ़, कान्हा, पन्ना, सतपुड़ा और रातापानी जैसे टाइगर रिजर्व, दोनों ही पर्यटकों से भरे हैं। यह बताता है कि एक ही परिवार में दो तरह की पसंद रखने वाले लोग हैं। कोई दर्शन करना चाहता है तो कोई एडवेंचर। दोनों को एक ही राज्य में अपनी पसंद का अनुभव मिल रहा है। धर्म और वन्यजीव पर्यटन का यह संगम मध्यप्रदेश को पर्यटन के नक्शे पर अलग पहचान दे रहा है।

यह नया अर्थशास्त्र भी है। लोग कहते हैं कि महंगाई है, जेब खाली है, लेकिन होटल फुल हैं। यह विरोधाभास नहीं, बदलती प्राथमिकताओं का संकेत है। अब मध्यम वर्ग पैसा सिर्फ सोने-चांदी या सामान पर नहीं, बल्कि अनुभवों पर भी खर्च करना चाहता है। उसका मानना है कि यादें बनाओ, सामान तो बाद में भी खरीदा जा सकता है। यही कारण है कि एमपी टूरिज्म के होटलों के साथ निजी होटल और रिसॉर्ट भी फुल हैं। टाइगर रिजर्व में सफारी की बुकिंग पूरी हो चुकी है और जिप्सियां उपलब्ध नहीं हैं। लोग महंगे पैकेज भी ले रहे हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि परिवार के साथ जंगल में बिताए गए पल लंबे समय तक याद रहेंगे। लेकिन इस अच्छी खबर के पीछे एक परेशानी भी छिपी है। जिन लोगों ने घूमने की योजना बनाई, उन्हें कई जगह होटल और सफारी की उपलब्धता नहीं मिल रही है। त्योहार के मौसम में एडवांस बुकिंग के बावजूद जगह मिलना मुश्किल हो रहा है। यह आम पर्यटक की समस्या है। जो पहले से योजना नहीं बनाता, उसके लिए अब विकल्प सीमित हैं। कोई भोपाल से कान्हा जाने की सोचता है, लेकिन वहां पहुंचने से पहले ही पता चलता है कि होटल नहीं है और जिप्सी भी उपलब्ध नहीं है। इससे उसका पूरा बजट और समय प्रभावित होता है। यह बताता है कि मांग बहुत ज्यादा है और आपूर्ति कम। सरकार ने पर्यटन का प्रचार तो खूब किया, लेकिन उसके अनुरूप कमरे, जिप्सियां और प्रशिक्षित गाइड नहीं बढ़ाए। भविष्य की चुनौती भी यही है। सौ प्रतिशत बुकिंग अगर संभाली नहीं गई तो अगले साल यह आंकड़ा घट भी सकता है, क्योंकि निराश पर्यटक दोबारा आने से पहले दूसरे राज्यों का विकल्प तलाशेगा। राजस्थान, केरल और हिमाचल भी पर्यटकों का इंतजार कर रहे हैं। मध्यप्रदेश को अब अपनी पर्यटन क्षमता बढ़ाने पर ध्यान देना होगा। नए रिसॉर्ट बनाने होंगे, स्थानीय युवाओं को गाइड और ड्राइवर के रूप में प्रशिक्षित करना होगा और ऑनलाइन बुकिंग की व्यवस्था आसान बनानी होगी, ताकि हर परिवार को ठहरने की जगह और सफारी का अवसर मिल सके। पर्यटन का लाभ सिर्फ एडवांस बुकिंग कराने वालों तक सीमित नहीं रहना चाहिए। पर्यावरण का सवाल भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। जब जंगलों में पर्यटकों की भीड़ बढ़ेगी तो वन्यजीवों पर भी असर पड़ेगा। टाइगर रिजर्व में 25 नवंबर तक सफारी फुल होने का मतलब है कि हर दिन बड़ी संख्या में गाड़ियां जंगल में दौड़ेंगी। शोर और प्रदूषण होगा। क्या यह वन्यजीवों के अनुकूल है? पर्यटन बढ़ना अच्छी बात है, लेकिन बेलगाम भीड़ अच्छी नहीं। सरकार को पर्यटकों की संख्या के साथ पर्यावरण संरक्षण के नियमों का भी सख्ती से पालन कराना होगा, ताकि जंगल जंगल रहें और मंदिर मंदिर। वे बाजार में न बदल जाएं। रोजगार का पहलू भी महत्वपूर्ण है। जब होटल फुल हैं तो स्थानीय लोगों को इसका फायदा मिलना चाहिए। क्या पचमढ़ी का आदिवासी युवक होटल में मैनेजर बन रहा है? क्या कान्हा के आसपास के गांवों के लोग जिप्सियां चला रहे हैं या बाहर से आए लोग यहां का कारोबार संभाल रहे हैं? यदि स्थानीय लोगों को पर्यटन से फायदा नहीं मिला तो यह विकास अधूरा है। पर्यटन का असली लाभ तभी है, जब गांव का आदमी भी कह सके कि पर्यटकों के आने से उसके घर में भी दिवाली आई है।

यह भीड़ मध्यप्रदेश पर लोगों के भरोसे का संकेत भी है। उन्हें लगता है कि यह राज्य सुरक्षित है, साफ है और हर तरह का अनुभव देता है। दिल्ली के धुएं से परेशान लोग यहां खुली हवा में सांस लेने आ रहे हैं। इस भरोसे को बनाए रखना जरूरी है, क्योंकि यही पर्यटन की असली पूंजी है। होटल की इमारतें तो बन जाएंगी, लेकिन भरोसा एक बार टूट गया तो उसे दोबारा कायम करना मुश्किल होगा। इसलिए सरकार को सफाई, सुरक्षा और पर्यटकों को सही जानकारी देने पर विशेष ध्यान देना होगा, ताकि जो पर्यटक इस दिवाली जगह न मिलने के कारण मध्यप्रदेश नहीं आ पाया, वह अगली दिवाली जरूर आए और कह सके कि मध्यप्रदेश में दिवाली मनाने का अनुभव सबसे अच्छा है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

बारिश का आंकड़ा आधा और सरकारी फाइल पूरी, यह कैसा सूखा प्रबंधन है?

बारह जिलों में सूखे जैसे हाल, कागजों में सामान्य

गाइडलाइन की बाधा में फंसा किसान का निवाला

अब सरकार दो विकल्पों पर करेगी काम, जिले बनाएंगे प्लान, राज्य करेगा मदद

मध्यप्रदेश के बारह जिलों में खेत सूखे पड़े हैं, किसान आसमान देख रहा है और सरकार गाइडलाइन। सुनने में अजीब लगता है, लेकिन यही सच है। आलीराजपुर में सामान्य से 51 प्रतिशत कम बारिश हुई है। धार में 40 प्रतिशत कम, झाबुआ और रतलाम में 35 प्रतिशत कम, नर्मदापुरम में 33 प्रतिशत कम, हरदा में 32 प्रतिशत कम, बैतूल में 31 प्रतिशत कम, इंदौर और उज्जैन में 27 प्रतिशत कम, पांढुर्णा में 23 प्रतिशत कम, शाजापुर में 22 प्रतिशत कम और छिंदवाड़ा में 21 प्रतिशत कम बारिश दर्ज की गई है। आंकड़े साफ संकेत दे रहे हैं कि कई जिलों में सूखे जैसे हालात हैं, लेकिन सरकारी कागज कह रहे हैं कि सूखा घोषित नहीं किया जा सकता। वजह यह है कि सूखे के आकलन के निर्धारित मापदंडों में बारिश की कमी के साथ बुवाई के रकबे में गिरावट और फसलों की वास्तविक स्थिति को भी आधार बनाया जाता है।

यही वह बिंदु है, जहां सवाल उठता है कि क्या सूखा सिर्फ बुवाई के रकबे से तय होगा? क्या किसान की आंख में आया आंसू गाइडलाइन में नहीं आता? अगर आलीराजपुर में आधी बारिश हुई है तो वहां का आदिवासी किसान क्या करेगा? वह तो पहले से ही कर्ज में डूबा है। मुख्यमंत्री के गृह जिले उज्जैन में भी 27 प्रतिशत कम बारिश हुई है। प्रदेश भाजपा अध्यक्ष के गृह जिले बैतूल में 31 प्रतिशत कम पानी बरसा है। जब बड़े नेताओं के जिले ही पानी के लिए तरस रहे हैं तो आम जिलों का क्या हाल होगा? लेकिन सरकार का कहना है कि अभी खरीफ फसलों की कटाई और रबी की बुवाई का काम जारी है। यदि इनके रकबे में अन्य वर्षों की तुलना में कोई बड़ा अंतर आता है तो उसे आधार बनाया जा सकता है। यानी किसान की फसल बर्बाद होने के बाद आंकड़े गिने जाएंगे और उसकी भूख के बाद सर्वे होगा। यह कैसी व्यवस्था है?

गाइडलाइन किसके लिए बनी है, किसान के लिए या सरकार के लिए? गाइडलाइन कहती है कि सिर्फ बारिश कम होना सूखा नहीं है। बुवाई कम होनी चाहिए और फसल खराब होनी चाहिए, तभी सूखा घोषित होगा। लेकिन मध्यप्रदेश में किसान ने तो बुवाई कर दी थी, बारिश ने धोखा दे दिया। उसने कर्ज लेकर बीज बोया था, खाद डाली थी। अब खेत में अंकुर सूख गया है तो क्या वह सूखा नहीं है? सरकार कहती है कि जिलों से विस्तृत कार्ययोजना मंगाई गई है और जरूरी खर्च का आकलन करते हुए प्लान मांगे गए हैं। यानी अब जिले कागज बनाएंगे, राज्य सरकार कागज देखेगी और फिर केंद्र को कागज भेजे जाएंगे। तब तक किसान क्या खाएगा, क्या वह कागज खाएगा? यह फाइलों का सूखा जमीन के सूखे से भी ज्यादा खतरनाक है। अब सरकार दो विकल्पों पर काम कर रही है। पहला, सभी बारह जिलों से कम बारिश के कारण पैदा हुई समस्याओं और उनसे निपटने के लिए जरूरी खर्च का आकलन करते हुए विस्तृत कार्ययोजना मांगी गई है। दूसरा, राज्य और केंद्र स्तर पर ऐसे विकल्प तलाशे जा रहे हैं, जिनसे सूखा घोषित किए बिना भी जिलों को अधिकतम आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जा सके। यह सुनने में अच्छा लगता है, लेकिन इसका मतलब क्या है? क्या सरकार सूखा शब्द से इसलिए बच रही है कि सूखा घोषित करते ही किसानों के लिए अतिरिक्त आर्थिक मदद का बड़ा खर्च उठाना पड़ेगा? किसानों को फसल नुकसान पर राहत देनी होगी। ऐसे जिलों में किसानों द्वारा फसलों के लिए लिए गए कर्ज पर ब्याज में छूट या अन्य राहत देनी पड़ सकती है। यह खर्च बड़ा है, इसलिए क्या सूखे की औपचारिक घोषणा से बचने की कोशिश हो रही है? यह बड़े जोखिम वाला मामला है, जो अब तक पूरी तरह सामने नहीं आया था। केंद्र सरकार भी राज्यों में कम बारिश को लेकर गंभीर है। कई स्तरों पर बैठकें हो चुकी हैं और राज्यों से आंकड़े मंगाए जा चुके हैं। दिल्ली के सूत्रों के मुताबिक, केंद्र भी औसत से कम बारिश वाले जिलों और राज्यों के लिए अलग आर्थिक इंतजाम कर सकता है। आने वाले समय में राज्य सरकार इन बारह जिलों में पेयजल योजनाओं के लिए अलग से अतिरिक्त राशि जारी कर सकती है। लेकिन ये सभी विकल्प अभी विचाराधीन हैं। यानी अभी तक ठोस राहत नहीं मिली है, सिर्फ विचार चल रहा है और किसान के खेतों में दरारें बढ़ रही हैं। प्रदेश के 55 जिलों में से वर्ष 2026 में नौ जिलों में सामान्य से अधिक बारिश हुई है। इनमें भिंड, शिवपुरी, मऊगंज, सतना, निवाड़ी, मैहर, शहडोल, सिंगरौली और उमरिया शामिल हैं, जबकि 34 जिलों में बारिश का स्तर सामान्य रहा है। तो फिर इन बारह जिलों का क्या दोष है? क्या एक ही प्रदेश में एक तरफ बाढ़ और दूसरी तरफ सूखा नहीं हो सकता? क्या सरकार को एक ही गाइडलाइन से पूरे प्रदेश को नापना चाहिए? आलीराजपुर और धार की जमीन और इंदौर की जमीन एक जैसी नहीं है। वहां की आदिवासी खेती पूरी तरह मानसून पर निर्भर है। अगर मानसून में 50 प्रतिशत की कमी हो गई तो वहां अकाल जैसी स्थिति है। उसे कागजों में सामान्य बताना अन्याय है। असली समाधान क्या होना चाहिए? पहला, सूखे की गाइडलाइन में बदलाव किया जाए। बारिश की कमी को प्रमुख आधार बनाया जाए। अगर 50 प्रतिशत से ज्यादा कमी है तो तत्काल सूखे जैसे हालात मानकर राहत दी जाए। बुवाई के रकबे का इंतजार न किया जाए। दूसरा, किसान को बीमा और कर्जमाफी की लंबी प्रक्रिया में न उलझाकर सीधे नकद मदद दी जाए। पेयजल योजनाओं पर अभी से काम शुरू किया जाए, क्योंकि जहां खेती के लिए पानी कम है, वहां पीने के पानी का संकट भी खड़ा हो सकता है। अगर अभी से टैंकरों और हैंडपंपों की मरम्मत पर पैसा नहीं लगाया गया तो दिसंबर-जनवरी में पलायन शुरू हो सकता है।

सबसे बड़ा सवाल यह है कि सरकार सूखा घोषित करने से क्यों डरती है? क्या सिर्फ इसलिए कि मुआवजा देना पड़ेगा? अगर सरकार सच में किसान हितैषी है तो उसे शब्दों से नहीं डरना चाहिए। बारह जिलों में सूखे जैसे हालात हैं तो उन्हें सूखाग्रस्त मानकर राहत देना ही ईमानदारी है। गाइडलाइन की बाधा बताकर जिम्मेदारी से बचना आसान है, लेकिन किसान की भूख गाइडलाइन नहीं देखती, वह रोटी देखती है। अब सरकार दो विकल्पों पर काम करेगी, जिले प्लान बनाएंगे और राज्य मदद करेगा। यह अच्छी बात है, लेकिन मदद शब्दों में नहीं, पानी और पैसे के रूप में दिखनी चाहिए। अन्यथा अगले साल फिर यही खबर छपेगी कि बारह जिलों में सूखे जैसे हालात हैं और राहत सरकारी गाइडलाइन में अटकी हुई है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

निर्यात बढ़ाने की नई सोच, चीन महँगा तो मध्यप्रदेश के लिए मौका

भोपाल में हुआ एक्सपोर्ट एंड एफटीआईई कॉन्क्लेव सिर्फ एक सरकारी कार्यक्रम नहीं था, बल्कि यह मध्यप्रदेश की आर्थिक सोच में आए बदलाव का संकेत है। वर्षों से हम सुनते आए हैं कि मध्यप्रदेश खेती प्रधान राज्य है, खनिज प्रधान राज्य है, लेकिन अब पहली बार सरकार खुलकर कह रही है कि इसे निर्यात प्रधान राज्य बनना है। एमएसएमई का निर्यात बढ़ाने के लिए जरूरत पड़ी तो सरकार अपनी नीति तक बदल देगी। यह एक बड़ा राजनीतिक बयान है।

आमतौर पर सरकारें नीति बनाकर उद्योगों को उसमें फिट होने के लिए कहती हैं, लेकिन यहां उल्टा हो रहा है। सरकार कह रही है कि आप पहले निर्यात कीजिए, जहां दिक्कत आएगी, हम नीति को वहां मोड़ देंगे। यह छोटे उद्यमियों के लिए एक बड़ा मनोवैज्ञानिक भरोसा है।

इस पूरे कॉन्क्लेव की सबसे महत्वपूर्ण बात चीन से जुड़ी है। मंत्री कश्यप ने कहा कि चीन में लागत बढ़ने से अच्छे अवसर बने हैं। यह बात काफी हद तक सही है। पिछले बीस साल से दुनिया की फैक्ट्री चीन था, क्योंकि वहां उत्पादन सस्ता था। आज चीन पहले जैसा सस्ता नहीं रहा। वहां बिजली महंगी हो गई है, श्रम लागत बढ़ गई है, श्रम कानून सख्त हुए हैं और अमेरिका-यूरोप ने उस पर टैरिफ लगा दिए हैं। नतीजा यह है कि जो विदेशी खरीदार पहले चीन से 100 रुपये में माल खरीदता था, उसे अब 130 रुपये देने पड़ रहे हैं। वह खरीदार विकल्प तलाश रहा है। वह ऐसा देश चाहता है, जो चीन जैसा माल बना सके, लेकिन सस्ता और भरोसेमंद हो। भारत के पास यह मौका है और मध्यप्रदेश के पास तो और बड़ा अवसर है। हमारे यहां बिजली अभी भी तुलनात्मक रूप से सस्ती है, श्रम उपलब्ध है और जमीन भी है। अगर हमने अगले तीन साल में इस अवसर को नहीं पकड़ा तो यह खिड़की वियतनाम और बांग्लादेश के लिए खुल जाएगी। इसलिए यह सही समय है। सरकार ने भी एफटीआईई कार्ययोजना में सात उद्देश्यों के अंतर्गत 31 कार्य बिंदु तय किए हैं। कॉन्क्लेव में पांच व्यवस्थाओं का शुभारंभ किया गया। इनमें सबसे ज्यादा चर्चा एफटीआईई हेल्पडेस्क की है। वेबसाइट पर निर्यातकों के सवाल पूछने की सुविधा दी गई है। लेकिन क्या एक फोन नंबर से निर्यात बढ़ेगा? अनुभव बताता है कि निर्यात एक फोन से नहीं, बल्कि पूरे इकोसिस्टम से बढ़ता है। जबलपुर में फर्नीचर बनाने वाले छोटे उद्यमी को यह नहीं पता कि उसका माल जर्मनी में कैसे बिकेगा, वहां पैकेजिंग के मानक क्या होंगे और भुगतान कैसे मिलेगा। उसे सिर्फ हेल्पडेस्क नहीं, बल्कि पूरी प्रक्रिया में मार्गदर्शन की जरूरत है। इस बार सरकार ने 1250 करोड़ रुपये के क्लस्टर प्रोजेक्ट की बात की है। साथ ही समझौतों के लाभ, उत्पत्ति के नियम और उत्पादन क्षमता बढ़ाने जैसे विषयों पर भी चर्चा हुई है। अगर हेल्पडेस्क सिर्फ सवाल-जवाब तक सीमित न रहकर सैंपल भेजने से लेकर खरीदारों के साथ बैठक कराने तक मदद करे तो यह क्रांतिकारी साबित हो सकता है। वरना यह भी दूसरी हेल्पलाइनों की तरह सिर्फ घंटी बजाने वाली मशीन बनकर रह जाएगा।

मुख्य सचिव के तीन सुझावों का असली मतलब भी समझना जरूरी है। अपने क्षेत्र के कम से कम पांच ऐसे उत्पाद चुनें, जिनमें निर्यात की सबसे अधिक क्षमता है। उत्पादन के लिए सबसे संभावनाशील बाजार पहचानें और उन इकाइयों को चिन्हित कर